बंगला का आरंभिक मंच

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। विशेष रूप से बंगला साहित्य पर वह अधिक था। नाट्य-साहित्य बंगाल में प्राचीन काल से प्रचलित था। 'जात्रा' के रूप में खुले आकाश के नीचे, घुमन्तू नटों की टोलियां, पौराणिक विषयों पर मनोरंजन और धर्मोपदेश के सुन्दर सम्मिश्रण वाले जन-नाट्य दिखाती थीं। उनका प्रचार खूब था और वे खासी लोकप्रिय भी थीं। परन्तु शहरों के बनने के साथ ही ऐसे रंगमंच बनने लगे जो स्थायी रूप के थे—थियेटरों के लिए नाटकों की भी मांग शुरु हुई। रूसी अभिनेता हिरांशिम लेबेडेफ् ने वैसे तो १७९५ के करीब कलकत्ते में पहली नाटक मंडली चालू की, परन्तु उसमें खेले जाने वाले नाटक अधिकतर अंग्रेजी अनुवाद होते। बाद में संस्कृत के अनुवादों का युग चल पड़ा। प्राचीन बंगला में रामनारायण तर्करत्न का 'कुलोन कुल सर्वस्व' नामक सामाजिक नाटक प्रख्यात है, जिसमें बहु-विवाह की प्रथा पर चोट है, उसकी भर्त्सना है। माईकेल मधुसूदन दत्त ने भी बंगला-नाट्य साहित्य को योगदान दिया। उनके चार नाटक हैं : 'शर्मिष्ठा', 'पद्मावती', 'कृष्णाकुमारी', 'माया कानन' और दीनबन्धु मित्र में 'नीलदर्पण' ने तो बंगाल के नाट्य-साहित्य में क्रान्ति उपस्थित कर दी। 'नील-दर्पण' से जनता ऐसी प्रक्षुब्ध हुई कि सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। नील के खेतिहर मजदूरों पर होने वाले अत्याचारों का उसमें चित्रण था। शहराती नाटकों की यह व्यंगमयी सामाजिक धारा देहाती 'जात्रा' नाटकों को भी प्रभावित करने लगी। अन्नदाशंकर राय ने लिखा है कि ग्रामीण रंगमंच ने शहर के रंगमंच के सब दुर्गुण मानो अपना लिए और शहरी रंगमंच हृदय से वैसा ही ग्रामीण बना रहा (बंगाली लिटरेचर पृष्ठ ४७)

कलकत्ता के आरम्भिक बंगाली मंच का हाल कैसा था ? इसका प्रमाण दो विज्ञापन हैं : ५ नवम्बर १७९५ के कलकत्ता गजट में निम्न विज्ञप्ति पढ़ने को मिलती है—

By permission of the Honourable the Governor General
Mr Lebedeff's
New theatre in the Doomtullah
Decorated in the Bengale Style
Will be opened very shortly, with a play called
The Disguise
The characters to be supported by Performers of both Sexes,
To Commence, vocal and instrumental Music, called
The Indian Serenade

Scanned with CamScanner

और इस पहले विज्ञापन के तीन सप्ताह बाद प्रथम अभिनय की तारीख इत्यादि सर्व साधारण को सूचित कर दी गई। १७९४ ईस्वी २६ वीं नवम्बर की कलकत्ता गजट में देखा जा सकता है—

Bengal Theatre
No. 25, Doomtullah
Mr. Lebedeff
Has the honour to acquaint the Ladies and Gentlemen
of the settlement that His Theatre
Will be opened
Tomorrow, Friday 27th Instant
With a Comedy called
The Disguise
The play will commence at 8 O'clock precisely.

| Boxes and Pit Sa. Rs, 8
| Gallery " " 4

लेबेडेफ् के बाद प्रसन्नकुमार ठाकुर का हिन्दू थियेटर कलकत्ता में चला। यह बंगालियों के उद्योग में नाटक का प्रथम अभिनय था। उन दिनों बंगाली रंगमंच पर शेक्सपीयर का बड़ा बोलबाला था। मरचंट आफ़ वेनिस और जूलियस सीजर चलता था। बाद में अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक आदि के साथ नाट्यकारिता में नव-जीवन लाया गया। १८४१ में ६ सितम्बर को मणिमोहन सरकार का महाश्वेता नाटक खेला। बाद में तो नाटक मण्डलियों के जो नाम हैं, उन्हीं से उनके उद्देश्य जाने जा सकते हैं : विद्योत्साहिनी रंगमंच, बेलगाछिया नाट्यशाला, मेट्रोपोलिटन थियेटर, पाथूरियाघाट रंग नाट्यालय, शोभाबाजार प्राइवेट थियेट्रिकल सोसायटी आदि।

बाद में नेशनल थियेटर ने जब नील-दर्पण का अभिनय किया तो २० दिसम्बर १८७२ को 'इंग्लिशमैन' ने लिखा—

"एक देशी पत्र कहता है कि जोड़ासांकों के नेशनल थियेटर में 'नीलदर्पण' शीघ्र ही खेला जायेगा। रेवरेंड मि० लौंग को एक महीने की सजा दी गई, इस नाटक का अनुवाद करने पर। चूंकि यह नाटक हाईकोर्ट द्वारा यूरोपियनों की बदनामी करने वाला घोषित किया गया। इस बात का विचार करके यह विचित्र जान पड़ता है कि सरकार इसके अभिनय की कलकत्ते में अनुमति दे रही है। इसे किसी सुयोग्य 'सेन्सर' के हाथों में से गुजरने दिया जाना चाहिए, बदनामी करने वाले हिस्से इसमें से कम कर देना चाहिये और तभी अभिनय की अनुमति दी जानी चाहिये।"

'नीलदर्पण' के समय से बंगाली रंगमंच पर साहबों के प्रति असन्तोष और क्रोध की भावना उभारने का जो सूत्रपात हुआ उसकी प्रतिक्रिया नेशनल थियेटर के प्रति ऐसी हो गयी थी। डेव कार्सन नामक एक अंग्रेज ने आपेरा हाउस में बंगाली बाबू नामक एक व्यंग प्रहसन लिखा। उसने इंग्लिशमैन पत्र में विज्ञापन दिया—
Dave Karson Sahab Ka Pakka Tamassha (डेव कार्सन साहेब का पक्का

तमाशा, मुस्तफी साहब का पक्का तमाशा इसी का पलटा हुआ जवाब था। शेखर साहब विदेशी कपड़े पहिनकर हाथ में बेहाला लेकर गान करते हैं, बंगाली हिन्दुस्तानी मिश्रित अंग्रेजी खिचड़ी जबान में—

हाम बड़ा साहब हाय दुनिया में
नन केन बी कम्पेयर्ड हमारा साथ
मिस्टर मुस्तफी नाम हमारा,
चाटगांव मेरा आछे बिलात
राम् टि टाम् टि टाम्
घर की मालेक आदमि कि मालेक
साई आफ आल है हाम
नेहू सस्ता निगर्स पात मेरा टालरेट
चूनाम गली मेरा धाम।
राम टि टाम् टि टाम्...

इसके अन्त में एक कोरस (सहगान) होता था जिसमें 'आई एम ए जन्टलमैन' टेक होती थी।

बाद में नैशनल थियेटर की आपस में बड़ी लड़ाइयां हुई। लोगों ने कोशिश की कि ये मतभेद कम हों पर वे कम न हो सके। १८७७ को ८ मार्च को इंगलिश मैन ने विज्ञापन दिया—नेशनल थियेटर की अन्तिम रात। शनीचर, ८ मार्च बुरा शालिकेर घरेर रोड, जामुन करमो तामनी फोल।

अमृतलाल ने उसकी अन्तिम विदा का काव्यमय दृश्य वर्णन किया है। कैसे गिरीश बाबू का एक रचा गान गाकर अभिनेतागण दर्शकों से दूर हुए। गान था—कातर अन्तरे आमि चाहि विदाय। साथि आहे सुधि ब्रज भूलो ना आमाय।

रंगमंच के इस सारे उलट-फेर का असर साहित्यिक नाटकों पर भी बंगाल में कम नहीं पड़ा। द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में हास्य के जो प्रसंग, उपकथानक या दृश्य, अलग जोड़े हुए से लगते हैं, वे इसी अभिरुचि की निम्न दशा के कारण।

द्विजेन्द्रलाल राय पर विस्तार से चर्चा एक दूसरे लेख में मैंने की है। इंग्लैंड में पढ़े द्विजेन्द्रलाल राय पर शेक्सपीयर के संस्कार बहुत अधिक हैं। परन्तु उनमें एक राष्ट्रप्रेम की एक ऐसी दुर्दमनीय आकांक्षा लौ की तरह जल रही थी, जो उन्हें बंकिम चन्द्र की भांति प्राचीन इतिहास से स्फूर्ति लेने पर बाध्य करती रही। चन्द्रगुप्त मौर्य, सिंहल-विजय से लगाकर शाहजहां और रानी दुर्गावती तक द्विजेन्द्र ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। परन्तु बंकिम में जहां हिन्दू पुनरुत्थान की भावना प्रबल थी, द्विजेन्द्रलाल राय हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनके लिए मुगल हों, या राजपूत, यूनानी हों या भारतीय, नाटकीय पात्रों की दृष्टि से सब समान थे। उनकी सहानुभूति सब पात्रों के प्रति एक सी थी। उनके चन्द्रगुप्त और शाहजहां नाटक बंगाल में बहुत खेले गए। शक्ति और वीर-पूजा उनके प्रमुख गुण थे। उनके हांडीर गान में उन्होंने सब प्रकार की कमजोरियों का मजाक उड़ाया है। विदेशी सत्ता के कारण भारतीयों में जो हीन-भाव आ गया था—उसका द्विजेन्द्रलाल राय ने खूब पर्दाफाश किया है।

उनकी काव्यमयी शैली का असर उनके परवर्ती नाटककारों पर भी हुए बिना नहीं रहा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अपने आप में अलग स्थान है। उनकी बंगाल को गीति-नाट्य की देन अपूर्व है। चित्रांगदा, मालिनी, वाल्मिकी-प्रतिभा, नटीर पूजा, ताजेर देश, रक्तकरवी आदि उनके ऐसे नाटक है जो किसी भी भाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले नाम है। उनमें काव्य-संगीत के सर्वोत्तम तत्वों के सम्मिश्रण के साथ साथ चरित्र चित्रण की अद्भुत प्रतिभा थी। नाटक के माध्यम द्वारा आवश्यक औत्सुक्य संवादों द्वारा बराबर बनाए रखते है। माध्यम द्वारा नाट्य में वस्तुतः वे अपना जीवन-दर्शन ही व्यक्त करते है। वैसे तो बंगाल की नाट्य परम्परा चैतन्य महाप्रभु के जमाने से चली आ रही है। उसी कीर्तन परम्परा में वैष्णव विताधारा के भुवन सुन्दर के उपासक रवीन्द्रनाथ ने एक नया अध्याय जोड़ दिया। गिरीशचन्द्र घोष, अमृतलाल वसु, अमरेशचन्द्र मुखोपाध्याय आदि अभिनेता भी थे और नाटककार भी। मनमोहन वसु, रवीन्द्रनाथ से पहले हुए थे। उन्होंने पांचाली नामक लोकगीत को मंच योग्य नाटकों के साथ समन्वित किया था। ठाकुर परिवार में रवीन्द्रनाथ के बड़े भाइयों में तृतीय ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर नाटककार थे। गिरीशचन्द्र रवीन्द्र के सम सामयिक अत्यन्त विख्यात अभिनय कुशल रूपान्तरकार थे। बंकिम के कपालकुण्डला और मृणालिनी को नाटक का जामा उन्होंने ही पहनाया। क्षीरेन्द्र-प्रसाद और अमृतलाल ने प्रहसन अधिक लिखे। परन्तु रवीन्द्रनाथ की बंगाल के नाटक को देन और ही किस्म की थी—गीति-नाट्य, नाट्य-काव्य, द्वन्द्व-काव्य, द्वन्द्व-नाट्य, हैयाली नाट्य, कौतुक नाट्य, प्रहसन, रूपक नाट्य तथा नृत्य नाट्य उनकी कृतियों के भेद माने जा सकते हैं। एक समालोचक ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नाट्कला की देन के बारे में लिखा है : रवीन्द्रनाथ के नाटक की मूल विशेषता उनकी गीतिप्रवणता और सौंदर्यानुभूति ही है। बहिर्घटना का अन्तर्द्वंद्व उनके नाटकों में नहीं है। सर्वत्र एक प्रशांत, स्थिर फिर भी सुतीव्र अनुभूति का सुर सुनाई पड़ता है। इस अन्तर्मुखी सुर की लीला में ही रवीन्द्र की प्रतिभा विकसित हुई। यह भारत वर्ष का ही सुर है। भारतवर्ष की अन्तर्लीन मानस-वाणी उनकी रचनाओं में ध्वनित हुई है।

रवीन्द्रनाथ ने नाटिकाएं और प्रहसन की परम्परा शुरु की, बाद के मन्मथ राय, शचीन सेन गुप्त, विजन भट्टाचार्य, जोगेशचन्द्र, अचिंत्य सेनगुप्त आदि ने उसे चलाया। सन् ४८ में मैंने कलकत्ते में एक रात को सीता नामक प्रसिद्ध प्रसिद्ध श्रेष्ठ बंगाली नाटक और दूसरे दिन हिन्दी स्टेज का समाज नामक लोकप्रिय हिन्दी नाटक देखे। तभी मुझे इस बात के रहस्य का पता चल गया कि सांस्कृतिक दृष्टि से बंगाली लोग 'देस बाडी मारवाड़ी लोक' कहकर हिन्दी-भाषियों का क्यों तिरस्कार से देखते है। क्या उनकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता का जो अहं-भाव उनमें है वह सर्वथा निराधार ही है ? मैं यहां बंगालियों की हिन्दी भाषियों की संस्कृति की तुलना या दोनों की बुराई नहीं करना चाहता हूँ, पर यह कहना चाहता हूँ कि जहां तक नाटक कला का प्रश्न है, अभिनय संगीत नृत्य का मंच रुचि का प्रश्न है, बंगाल की श्रेष्ठता

Scanned with CamScanner

मान लेने में हमें कोई संकोच नहीं करना चाहिए। जिस मंच ने शिशिर भादुरी, अहीन चौधरी, नवाब और साधना बोस और काननदेवी जैसे रत्न निर्मित किये, उनकी नाट्य-परम्परा, रसज्ञों की परम्परा का, पारसी थियेट्रिकल कम्पनी के धोअन जैसी कलकतिया हिन्दी स्टेज की उस सस्ती, रुचिहीनता से क्या तुलना ?

इसका अर्थ यह नहीं कि कलकत्ते के हिन्दी भाषियों ने स्वप्न-यामिनी जैसी महादेवी की रचनाओं पर आधारित सुन्दर गीत नाट्य रचनाएं प्रस्तुत नहीं की, या ओंकारनाथ ठाकुर ने बनारस में कामायनी का श्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण नहीं किया, पर हिन्दी में ऐसी घटनाएं अपवाद रूप है यह तो मानना ही होगा। बंगाल की नाट्यकला को अकाल के बाद इप्टा के रूप में एक नवीन अंकुर फूटा था। वे नवान्न के दिन थे। विजन भट्टाचार्य के नवान्न का हिन्दी अनुवाद हमारे मित्र नेमीचन्द जैन ने किया था और हंस में वह प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह बात आगे इप्टा में नहीं रही। और बंगाल की प्रतिभा, स्वर और अभिनय में जितना कमाल दिखलाती रही, साहित्यिक नाटकों के सृजनार्थ, अन्य सभी भारतीय भारतीय भाषाओं की भांति, वहां भी एक प्रकार की अधोगति आ गई। और अब केवल स्टार थियेटर में श्यामली सैकड़ों रात्रियों तक चलता है। श्यामली में अभिनय उत्तम है। पर नाट्य-वस्तु अन्त में बहुत ही कमजोर है।

शायद काव्य में जैसे रवीन्द्र, उपन्यास में जैसे शरच्चन्द्र वैसा कोई नक्षत्र नाट्य के क्षेत्र में बंगाल में अभी निर्माण होने वाला हो। भावी की कौन कह सकता है ?

— —